International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

यज्ञ-विधियों की वैज्ञानिकता: एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ सुरेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), भगवान परशुराम महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शोधसार – यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म[1] सम्पूर्ण विश्व में यदि कोई श्रेष्ठतम कर्म है तो वह यज्ञ ही है। अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार तत्तत् द्रव्यों से किसी अभीष्ट के निमित्त किया जाने वाला कर्म एक आराधना विशेष हैं। यह आराधना यदि विधिवत् की जाती है तो वह फलप्रद होती है, अन्यथा वह श्रममात्र है; उससे कोई लाभ नहीं होता। विधिहीन आराधना से आराध्य सन्तुष्ट नहीं होता। अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु प्राचीन ऋषि-महर्षियों के द्वारा आराध्य को सन्तुष्ट करने के लिए जो क्रिया-कलाप प्राप्त किया गया, वह यज्ञ है। उस यज्ञ से उन ऋषि-महर्षियों ने आराध्य परमेश्वर के लिए यजन किया। यजन ही यज्ञ का स्वरूप है। यजन करने से वह आराध्य देव भी यज्ञ के नाम से वेदों में अभिहित हुआ। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने देखा कि **''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।''**[1]

कूटशब्द - पञ्च महाभूत, अग्निहोत्र, शतक्रतु, प्रजापति, श्रुति, क्रतु, पञ्च प्राण, श्रौत कर्म, स्मार्त्त कर्म, विश्ववारा, पञ्चम वेद, वेदविद्या, शतपथी, प्रशस्त कर्म, अप्रशस्त कर्म, स्वाध्याय यज्ञ., तप यज्ञ।

भूमिका - सनातन संस्कृति में यज्ञ को केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि 'श्रेष्ठतम कर्म' (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म) माना गया है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने प्रकृति के नियमों को गहराई से समझकर जिन यज्ञ-विधियों का निर्माण किया, उनका आधार पूरी तरह वैज्ञानिक है। आधुनिक विज्ञान जहाँ आज पर्यावरण शुद्धि, ध्वनि तरंगों के प्रभाव और पदार्थ के रूपान्तरण पर शोध कर रहा है, वहीं हज़ारों वर्ष पूर्व रचे गए वैदिक साहित्य में यज्ञ विज्ञान के इन रहस्यों को प्राचीन काल में ही समाहित कर लिया गया था। यज्ञ केवल मन्त्रोच्चारण और अग्नि में आहुति देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पदार्थ विज्ञान (Matter), ऊर्जा विज्ञान (Energy), और पर्यावरण विज्ञान (Environmental Science) का एक अनूठा संगम है। यज्ञकुण्ड की विशेष ज्यामितीय संरचना (Geometry), विशिष्ट समिधाओं (लकड़ियों) और जड़ी-बूटियों का चयन, और मन्त्रों से उत्पन्न होने वाले ध्वनि कंपन (Acoustic Vibrations) मिलकर एक ऐसी रासायनिक और भौतिक प्रक्रिया को जन्म देते हैं, जो वायुमंडल और मानव स्वास्थ्य दोनों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। प्रस्तुत शोध लेख में यज्ञ की इन्हीं प्राचीन विधियों में निहीत गूढ़

वैज्ञानिक सिद्धांतों, पर्यावरण शुद्धि और मानव शरीर एवं मस्तिष्क पर इसके प्रभावों का तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

यज्ञ से देवताओं ने यज्ञ का यजन किया। आदि में प्रजापतिरूप प्राण देवों ने अपने मानसिक संकल्पात्मक यज्ञ से यज्ञरूप प्रजापति का यजन-पूजन किया। उस पूजन-यजन से सृष्टि के रूप विकारों को धारण करने वाले प्रथम- मुख्य पंचमहाभूत थे। इस मानसिक यज्ञ को साकार करने हेतु भगवान् परमेष्ठी प्रजापति ने लोक-सृष्टि की आकांक्षा करते हुए अपने से उत्कृष्ट श्रेष्ठ देवता का अनुग्रह प्राप्त करने हेतु जब अपने से अतिरिक्त किसी अन्य उत्कृष्ट देवता का अभाव समझा तो स्वयं भगवान परमेष्ठी प्रजापति ने स्वयं अपने (प्राण देवों) के लिए यजन किया। उस परमेष्ठी (परम-उत्कृष्ट स्थान में निवास करने वाले) परमेश्वर प्रजापति में कार्य-कारण का एकत्व सर्वथा संभव था। उस परमेष्ठी प्रजापति के द्वारा किया गया वह यजन ही आदिम-प्रथम यज्ञ-रूप हो गया।

तदनन्तर इस यज्ञ को कर्मदेवों ने प्राप्त किया। जिन उच्च कोटि के तपस्वी श्रोत्रियों ने अग्निहोत्रादि श्रौतकर्म के द्वारा देवत्व प्राप्त किया, वे कर्मदेव हो गये। इन्द्र का एक नाम शतक्रतु है। **क्रतु** शब्द का अर्थ है यज्ञ। अर्थात् जिसने सौ-यज्ञ किये वह इन्द्र शतक्रतु हो गया। इस शतक्रतु नाम से इन्द्र को भी कर्मदेव कहना अनुचित नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि जो दिव्य पितृगण के सौ आनन्द हैं, कर्मदेव के लिए वह एक आनन्द है। कर्मदेवों के सौ आनन्द, सूर्यादि आजान देवताओं का एक आनन्द है। सृष्टि के पहले जो प्राण-साध्य देव देवत्व को प्राप्त किये वे आजान देव कहे जाते हैं।[2] यज्ञ का आविर्भाव या उसकी उत्पत्ति सृष्टि के साथ ही हुई है। इस विषय का उल्लेख भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में निम्नांकित है-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।[3]

प्रारम्भ में श्रुति के द्वारा सृष्टि कर्ता प्रजापति ने सृष्टि के साथ यज्ञ का सर्जन कर प्रजाजनों से कहा कि तुम लोग श्रौत एवं स्मार्त यज्ञों का अनुष्ठान कर देवताओं को प्रसन्न करो। देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया गया यज्ञ तुम लोगों के लिए अभीष्ट फल दायक हो।

देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।[4]

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

श्रौत एवं स्मार्त यज्ञ से तुम लोग इन्द्र आदि देवों को प्रसन्न करो, यज्ञ से प्रसन्न हुए इन्द्र आदि देव अभीष्ट फल प्रदान कर तुम्हें सन्तुष्ट करें। इस प्रकार एक दूसरे की सन्तुष्टि से तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त करोगे। निम्नांकित वेद का मन्त्र भी इसी बात को कहता है-

देहि में ददामि ते निमेधेहि निते दधे।

निहारं च हरासि में निहारं निहराणि ते स्वाहा।।[5]

इन्द्र ने यजमान से कहा- तुम मुझे पहले हवि प्रदान करो उसके बाद मैं तुम को इच्छित फल प्रदान करूँ। इसी बात की दृढ़ता के लिए पुनः कहा - यदि तुम मूल्य (दाम) रूप हवि दोगे तो मैं तुम को उसके बदले फलस्वरूप वस्तु (इच्छित फल) प्रदान करूँगा।

वस्तुतः यह उपर्युक्त संवाद प्रार्थना करने वाले मन्त्र द्रष्टा ऋषि से प्रार्थ्य देव इन्द्र का है। ऋषि-महर्षियों ने कर्मदेवों की आराधना कर उनसे इस यज्ञ को प्राप्त किया। इसके पश्चात् वेद-वेदांगों में पारंगत ब्रह्मवेत्ताओं को प्राप्त हुआ। इस प्रकार परंपरागत हम भारतीयों को यह यज्ञ प्राप्त हुआ। भगवान् परमेष्ठी सर्वज्ञ एवं सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होते हुए भी उन्होंने अपने सामर्थ्य से इस यज्ञ की सृष्टि नहीं की, अपितु **'अनादि निधना'** आदि-अन्त रहित भगवती श्रुति जैसी प्रलय के पहले पूर्वकल्प में थी, उसी का उन्होंने आविर्भाव किया। वेद के नाम से प्रसिद्ध इस गंभीर श्रुति-साहित्य में समग्र संसार के कल्याण हेतु विविध मांगलिक साधन छिपे हुए हैं। इस श्रुति को आलंबन कर स्रष्टागण जब-तब सृष्टि करते हैं। जगत् की आधार स्वरूपा इस चिरन्तनी श्रुति के बिना यह संसार घोर अन्धकूप में गिर सकता है। यही श्रुति-वेद जगत के कल्याण हेतु यज्ञों के विविध विधान करने वाली विश्ववारा-विश्व का आवरण करने वाली इस समग्र संसार की प्रथम संस्कृति है। संसार में सोमरसत्त्व **रसो वै सः** का निष्पादन करने वाली है। यह जगत् को उत्पन्न करने में बीज रूप है। अत एव इस को **विश्ववारा** कहा गया है।[6]

यज्ञ का विकास –

सृष्टि के आदि काल में यज्ञ का क्रियाकलाप अत्यन्त संक्षिप्त था। मनुष्यों का बुद्धि वैभव या बुद्धिबल जैसे-जैसे परिवर्धित हुआ वैसे-वैसे ऊहापोह (तर्क-वितर्क) के कौशल से यज्ञ भी विकसित होता गया। चरम बौद्धिक व्यायाम के बाद **''सर्वं यज्ञे प्रतिष्ठितम्''** अर्थात् यज्ञ में सबकुछ प्रतिष्ठित है, यह सूक्ति प्रसिद्ध होकर चरितार्थ हो गई। धीरे-धीरे गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र एवं धर्मसूत्रों की रचना हुई।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

महाभारत, जिसको **पंचम वेद** कहा गया है। महाभारत की रचना के बाद यज्ञ विविध रूप में विकसित हो गया।[7]

वैदिक वाड्मय के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि इस भारत देश में कभी ऐसा समय था, जहाँ वेदविद्या ही विद्या के नाम से सम्मत थी। वेदविद्या में निपुण विद्वान सभाओं, गोष्ठियों एवं सभी सामाजिक व्यवहारों में लोगों के द्वारा आदृत एवं सम्मानित होता था। साधारण जन वेदविद्या में निपुण विद्वान के वचनों को उपदेश मानकर, उसको स्वीकार करते थे। वेदविद्या का यथावत् अध्ययन करने के लिए ही प्रायः प्रत्येक त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) बालक को गुरूकुल में भेजा जाता था। गुरुकुल में उस वेदविद्या को प्राप्त करने के लिए तथा गुरु का कृपापात्र होने के लिए, दीन-धनी सब ही को साधारण रूप से गुरु की कठिन सेवा बरसों तक करनी पड़ती थी। गुरु की शुश्रूषा-सेवा से जो विद्या का रहस्य प्राप्त होता था, वह धन या अन्य उपाय से प्राप्त होना संभव नहीं था। समग्र वेद का अध्ययन करने के बाद ही समावर्तन संस्कार होन के बाद घर को लौटता था। प्राचीन समय में एक, दो या सभी वेदों के अध्ययन की परंपरा थी। चारों वेदों का अध्ययन संभव न होने पर अपनी परंपरा के अनुसार किसी वेद की या उस वेद की एक शाखा का अध्ययन करना आवश्यक था। इस वेदविद्या के अध्ययन में ब्राह्मण बालक अग्रगण्य था। उस समय वेदाध्ययन की परंपरा इतनी प्रशस्त एवं व्याप्त थी कि आज भी ब्राह्मणों के नाम के बाद द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, उपाधियाँ लगती हैं। इन्हीं ब्राह्मण बालकों में जो कोई बालक अग्निहोत्र करता था, उसकी परंपरा में अग्निहोत्री उपाधि प्रसिद्ध हो गई। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण का विशेष रूप से अध्ययन करने वाले की परंपरा में सतपथी (शतपथी) उपाधि भी प्रसिद्ध हो गई। प्राचीन समय से ही ब्राह्मणों के लिए यजन-याजन, दान लेना, दान देना वेद का अध्ययन करना तथा ब्राह्मण बालकों को वेद का अध्यापन कराना, ये छः कर्म (ब्राह्मणों के लिए) अनिवार्य थे।[8] महाभाष्यकार पंतजलि ने भी ब्राह्मण के लिए निष्कारण षडंगवेद का अध्ययन कर उसका ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख किया है।[9]

मनु ने यहाँ तक कह दिया कि जो ब्राह्मण यत्किञ्चित् (गायत्रीमन्त्र आदि) वेद का अध्ययन नहीं करता, वह शूद्र के समान है। समाज में ब्राह्मण का सर्वोत्तम स्थान इसलिए था, कि वह संसार के तत्तत् सभी लोगों को उन-उन के चरित्र एवं कर्तव्य की शिक्षा देता था।[10]

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है – शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के भाष्यकार महीधराचार्य ने चार प्रकार के कर्मो का निर्देश किया है। ये कर्म प्रशस्त, अप्रशस्त, श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठतम नाम से कहे गये हैं।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

1. **प्रशस्त कर्म** - लोक में प्रशंसनीय अपने बन्धु, बान्धव,जाति समाज का पालन, पोषण, शिक्षा आदि प्रशस्त कर्म है।

2. अप्रशस्त कर्म -लोकविरूद्ध किसी का वध करना, बन्धन में डालना, चोरी करना, किसी असहाय को पीड़ित करना आदि दुष्टकर्म या दुष्कर्म अप्रशस्त कर्म है।

3. **श्रेष्ठ कर्म** - स्मृति-पुराणो में निर्दिष्ट वापी (बावड़ी) कूप, तलाब आदि जलाशय, वन, उपवन, बाग, बगीचा, वृक्षारोपण, धर्मशाला, विद्यालय आदि का निर्माण- ये सब लोकोपकारक श्रेष्ठकर्म कहे गये हैं।

4. **श्रेष्ठतम कर्म** - श्रौत (श्रुति-वेद-के द्वारा प्रतिपादित) स्मार्त (स्मृति एवं पुराणों के द्वारा) निर्दिष्ट श्रौत-स्मार्त यज्ञ, याग, अग्निहोत्र आदि श्रेष्ठतम कर्म हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में यज्ञ को ही श्रेष्ठतम कर्म बतलाया गया है।[11]

यज्ञ शब्द देवपूजा, संगतिकरण एवं दान अर्थ को कहने वाली 'यज्' धातु से निष्पन्न है।

यज्ञ के विविध प्रकार –

भगवद्गीता में द्रव्ययज्ञ आदि पाँच यज्ञों का वर्णन है-

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।

स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः।।[12]

1. द्रव्ययज्ञ - परोपकार के लिए देवमन्दिर, धर्म-शाला, पाठशाला, अनाथालय आदि के निर्माण हेतु द्रव्य दान करना द्रव्ययज्ञ कहलाता है। पुराणों का प्रथम निष्कर्ष - **परोपकारः पुण्याय** अर्थात् पुण्य को प्राप्त करने के लिए परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं है। इस प्रकार उद्घोष वेदव्यासजी का है।

2. तपोयज्ञ - कृच्छ्रप्राजापत्य, चान्द्रायण आदि कठिन व्रतों की साधना या पालन करना तपोयज्ञ कहलाता है।

3. योगयज्ञ - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति-इन पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियों को एकाग्रता पूर्वक निरूद्ध (रोकना) अवस्था प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग का साधन योगयज्ञ है।

4. स्वाध्याय यज्ञ- वेदाध्ययन एवं अध्यापन ही स्वाध्यायरूपी यज्ञ है जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहा जाता है।

5. ज्ञानयज्ञ - जब अर्जुन को यह शंका हुई कि भीष्म, द्रोण आदि गुरुओं एवं स्वजनों के वध से उत्पन्न पाप से मेरी मुक्ति नहीं, तब कृष्ण ने समझाया कि हे अर्जुन, जैसे प्रदीप्त अग्नि काष्ठों को भस्म कर देती

है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सब कर्मों को भस्म कर देती है। निष्क्रिय आत्मज्ञान सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर देता हे, इसलिए ज्ञान के समान इस संसार में और शास्त्र में कोई वस्तु पवित्र नहीं है। अधिकारी दीर्घकाल के बाद स्वयं योग से संसिद्ध होकर उस ज्ञान को अपनी आत्मा में प्राप्त करता है। इस प्रकार का आत्मज्ञान प्राप्त करना ही ज्ञान यज्ञ कहा गया है।[13]

यज्ञ-विधियों का वैज्ञानिक स्वरूप –

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।[14]

अग्नि में दी हुई आहुति सूर्य देव को प्राप्त होती है। तदनन्तर उससे वृष्टि, वृष्टि से अन्न एवं अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है। हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक प्राणी का धर्म है कि वह भूतल पर सभी प्राणियों को अपना ही समझकर समस्त संसार का कल्याण करे। यह तभी संभव हो सकता है कि जब मनुष्य में निस्वार्थ बुद्धि हो। ईश्वर के अनुग्रह से निःस्वार्थ भाव की प्राप्ति होने पर मनुष्य में अलौकिक शक्ति की प्राप्ति होती है। अलौकिक शक्ति प्राप्त होते ही वह मनुष्य देवाराधन में तत्पर हो जाता है। संसार के कल्याण हेतु वह अपना आत्मसमर्पण कर देता हैं इस प्रकार आत्मसमर्पण रूपी त्याग से प्रेरित होकर ही वह यागादि शुभ कार्य की ओर प्रवृत्त होता है। उसके किये हुए यज्ञ के प्रभाव से प्राणीमात्र के समस्त अनिष्ट दूर होते हैं। अथर्ववेद में इसी बात की पुष्टि की गई है।

इस प्रकार से वाग्यमन-तप-व्रत-मौन-सङ्कल्प-योग-दीक्षा आदि शब्द एक दूसरे के पूरक या कुछ भिन्नता के साथ पर्याय ही हैं क्योंकि इनमें से किसी एक का भी प्रयोग होने पर अन्य भी स्वतः वहीं आ जुड़ते हैं जो कि व्यक्ति के लक्ष्य या उद्देश्य को पूरा करने में प्रबलशक्ति प्रदान करते हैं। ये सभी उस बीच की कड़ी का कार्य करते हैं जिसके माध्यम से मनुष्य असंभव से भी असंभव कार्यों को साध लेता है। वेद जो कि विद्वानों द्वारा सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं तथा भारतीय मनीषियों के मत में अनादिकाल से चले आ रहे हैं। उसमें इस प्रकार के संस्कारों का मिलना उनकी वरीयता प्राथमिकता तथा वैज्ञानिकता का ही सूचक है।

यद्यपि यहाँ पर किया गया वाग्यमन किसी अनुष्ठान का अंग नहीं, अपितु अङ्गिरूप में ही प्रतिष्ठित है जो कि वाग्यमन ही है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

शतपथ ब्राह्मणानुसार प्रजापति सृष्टि करते हैं तो उस समय किसी भी प्रकार के पदार्थादि के अभाव के कारण तप (वाग्यमन) ही करते हैं तथा आत्माश्रय भी करते हैं उससे ही सृष्टियज्ञ सफल होता है । अतः इस वाक् और वाग्यमन के सिद्धान्त को भलीभाँति समझने का प्रयास करना चाहिये। यह जो वाक् शब्द है यह कितने अर्थों को स्पष्ट करता है तथा कितनी इसकी परिभाषा हो सकती है अथवा यूँ कहिये कि इसकी सत्ता को कैसे जाना जा सकता है, तो कहा जायेगा यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है क्योंकि वाक् के चार स्वरूपों (परा-पश्यन्ती-मध्यमा वैखरी) में से प्रारम्भिक दो का तो ज्ञान भी नहीं हो पाता तथा तृतीय को हृदय में स्थित माना जाता है, जो कि पदार्थ के स्फोट की व्यञ्जिका कहलाती है। तथा चौथी वैखरी (जिसे कि हम बोलते हैं) को श्रवण का विषय तथा ताल्वादि आस्यस्थान से रूप प्राप्त कण्ठदेश से गमन करने वाली मानते हैं। यह इसका स्थूल स्वरूप है। इसी वाक् को तात्त्विक अर्थ व्यक्त करने वाली भी मानते हैं जो कि शब्दब्रह्मरूप वेद ही है तथा अनेक स्थलों पर इसको चक्षु का विषय भी कहा गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि यह वाक् परोक्ष अर्थों को भी मनुष्य के सम्मुख प्रत्यक्ष के समान रख देती हैं। जैसे-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।[15]

यह वाक् जब निष्प्रयोजन होती है तब यह अफला ही होती है तथा अर्थवती प्रयोग साध्या वाक् सफला । यही वाक् अन्तरिक्ष में भी व्याप्त है तथा पृथिवी पर भी। जब यह पृथिवी पर विशिष्ट शब्दों में गुंथी हुई किसी यज्ञ में बोली जाती है तब यह वर्षाप्रदा है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि यह वाणी बोली जाती है इसीलिए वाक् हुई तो इसको बोलने से पूर्व अच्छी प्रकार परख ले क्योंकि इस वाक् को सरस्वती (ज्ञानवती) भी कहा है। यह 'सर' शब्द ज्ञान तथा निर्मल जल को भी सूचित करता है। जैसे जल के स्पर्श से मनुष्य में पवित्रता आ जाती है उसी प्रकार ज्ञान भी वाणी को निर्मल कर उसके अभीष्ट को प्राप्त कराता है।

अतः इस वाणी का प्रयोग जैसे छलनी से सत्तू छानते हैं उस प्रकार करें तब यह वाक् निश्चित ही लक्ष्य एवं लक्ष्मीप्रदा होती है। जैसा कि इस मन्त्र से स्पष्ट है।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो, यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ।।[16]

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

ं एक यज्ञ है, यह वाक् भी यज्ञ है' इस विश्व के प्रत्येक प्राणी में भी यज्ञ चलता है। **वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।"**[17] यह ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में आता है।

इस विराट् पुरुष के यज्ञ में वसन्त ऋतु घी (आज्य), ग्रीष्म ऋतु समिधा (इध्म) और शरद् ऋतु हवि के रूप में कल्पित हुई। इस सृष्टि में भी सतत यज्ञ हो रहा है। "सूर्यो वा अग्निहोत्रम्"।[i]

वाग्यमन का दृष्टादृष्ट विज्ञान -

सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी में भी द्रव्य भोक्तृभाव से देवता विराजमान हैं और जहाँ द्रव्यदेवता विराजमान हैं तथा द्रव्य का त्याग होकर देवता से संयोग हो रहा है वहाँ भी यज्ञ चल रहा है। यह तथ्य कात्यायन मुनि के मत में भी स्वीकृत है। यह वाक् ही यज्ञ भी है तथा यज्ञ की सफलता हेतु एक साधन भी। अर्थात् यह वाक् कहीं साध्य है तो कहीं साधन भी। इस वाक् के रूप को समझाने के लिए कहीं इसको चार रूपों में विभक्त किया गया है तो कहीं इसको ऋषियों में अन्तर्निहित माना गया है । अर्थात् इस वाक् के अनेकों स्वरूप हैं परन्तु यहाँ हम वाक् के उस स्वरूप की चर्चा करते हैं जो कि प्रत्येक मनुष्य के द्वारा कण्ठ देश से बोली जाती है तथा कर्णेन्द्रिय का विषय है। इस वाक का नियमन वाग्यमन संस्कार है।

इस संदर्भ में हम सोमयाग के दीक्षाप्रकरण को लेते हैं जिसमें यज्ञकर्ता यजमान याग के महत्त्वपूर्ण संस्कार दीक्षा, व्रत आदि से होकर गुजरता है। इस संस्कार में यजमान बाह्य व आन्तरिक रूप से यज्ञ के आगोश में चला जाता है। यज्ञ का सम्पादन बाह्य आचार के साथ-साथ आन्तरिक आचार पर भी अवलम्बित है। यद्यपि यहाँ बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही आचार एक दूसरे के पूरक है परन्तु स्थूल रूप से बाह्य का तात्पर्य मेखला धारण, कृष्णविषाण धारण, कृष्णाजिन धारण, दण्डधारण व व्रतादि धारण करना है। तथा यज्ञ के आन्तरिक पक्ष की मजबूती के लिए वाग्यमन तथा सत्यभाषणादि करना है। यहाँ पर वाग्यमन के साथ-साथ सत्यभाषणादि पर भी विशेष जोर दिया गया है क्योंकि झूठ बोलने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार से यज्ञ का अधिकारी नहीं होता । अतः न केवल दीक्षित ही, अपितु प्रत्येक मनुष्य को सत्य बोलना चाहिये । इस विषय में कहा है कि वाग्देवी के दो स्तन हैं सत्य व अनृत । सत्य वाग्देवी के पुत्रों के उपासकों की रक्षा करता है जबकि अमृत का कार्य उनको मारना ही है। अतः जो इस तथ्य को जानकर सदा सत्य का आचरण करता है उसे वह अनृत नहीं मार पाता। लिखा भी है-

"वाचो वाव तौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते ।
अवत्येनं सत्यं न तममृतं हिनस्ति य एवं वेद"।।[18]

ताण्ड्य ब्राह्मण में भी असत्य बोलना वाणी का छिद्र कहा है- **"एतद्वाचश्छिद्र यदनृतं"।**[19]

इसका तात्पर्य यही है कि छेद के भीतर से सब वस्तुएं गिर जाती हैं उसी प्रकार अनृतभाषी की वाणी में से उसका सार गिर जाता है। अर्थात् वह सारहीन वाणी किसी भी प्रकार अपना प्रभाव नहीं दिखा पाती। इस प्रकार जब मनुष्य यज्ञ-परिधि में बँधता है तो अपने आप में वह वाग्यमन करता है जो कि उसके आत्मा का संयम है। मेखला दण्डादि धारण करने से उसके यज्ञ में दीक्षित होने का स्वयं के साथ-साथ अन्यों को भी ज्ञान होता है। अर्थात् जिस प्रकार से यजमान स्वयं की वाक् का पूर्णसंयमन करे उसी प्रकार अन्यों के द्वारा भी वह यजमान पूर्ण संयमित, वाग्व्यवहारादि से निःस्पृष्ट रखा जाना चाहिये। जिससे यज्ञ में किसी भी प्रकार का अयाज्ञिक भाव प्रवेश न करे। क्योंकि यजमान के चित्त में किसी भी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व होने से याज्ञिक क्रियाशैथिल्य की सम्भावना होती है। इस प्रकार से जो-जो वैध कृत्य है उनसे इतर वह किसी भी कर्म अथवा कृत्य को नहीं करता अर्थात् वह अपने को मनसा-वाचा-कर्मणा यज्ञ में ही अन्तर्भूत होता हुआ रहता है।

इस प्रकार से यज्ञार्पित होता हुआ वह यज्ञ के साध्य को प्राप्त कर लेता है। यह यजमान जो कि यज्ञात्मिका वेदरूपवाणी का प्रयोग करता है वह यज्ञ को अपने में ही आत्मसात् करता है।

यजमान यदि बोलने लगेगा तो वाक् अर्थात् अग्निस्वरूप यज्ञ इस अग्निस्वरूप बोली के जरिये बाहर निकल जायेगा ।बस आत्मसात् किया हुआ यज्ञ बाहर न निकल जाये, इसीलिए वाक् संयमन करता हुआ वाक्-रूप यज्ञ को आत्मा में स्थिर करता है।

"**अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्**"

"**वाग्वै यज्ञः। यज्ञमेवैतदात्मन् धत्ते**"।।[20]

ऐसा कहा है। वाक् एक तत्त्व भी है जो कि सर्वव्यापी है, तभी तो कहा है **"वागेवेदं सर्वम्"** । इस प्रकार से वाग्यमन के समय यजमान अपनी वाणी को मौन करता है तथा हाथों की मुट्ठी भींच लेता है तथा वाग्मुञ्चन के समय (मौनत्वनिष्ठ वाणी को विराम के समय) वह अपनी मुठ्ठी भी खोल देता है जो कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति की दृढ़ इच्छा को प्रतिपादित करती है तथा यह भी सूचित करती है कि अपने को अन्तर्दृढ़ बनाने के लिए बाह्य रूप में भी दृढ़ होना चाहिये ।

यद्यपि यह संस्कार केवल वाणी के मौनत्व को ही सूचित करता है फिर भी यह मौनत्व न केवल वाणी के द्वारा सम्पादित होने पर ही शक्ति देता है, अपितु युगान्तर में इसको चक्षु नियमन आदि के द्वारा

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भी शक्तिपुञ्ज के रूप में देखा गया है, जो कि दुष्कर प्राय ही है। तात्पर्य यही है कि अपने यज्ञ की सफलता के लिए किसी भी प्रकार से वाग्यमन-तप-व्रत-मौन-सङ्कल्प-योग-दीक्षा आदि शब्द एक दूसरे के पूरक या कुछ भिन्नता के साथ पर्याय ही हैं। क्योंकि इनमें से किसी एक का भी प्रयोग होने पर अन्य भी स्वतः वहीं आ जुड़ते हैं जो कि व्यक्ति के लक्ष्य या उद्देश्य को पूरा करने में प्रबलशक्ति प्रदान करते हैं।

ये सभी उस बीच की कड़ी का कार्य करते हैं जिसके माध्यम से मनुष्य असंभव से भी असंभव कार्यों को साध लेता है। वेदों जो कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं तथा भारतीय मनीषियों के मत में अनादिकाल से चले आ रहे हैं। इस प्रकार के संस्कारों का मिलना उनकी वरीयता प्राथमिकता तथा वैज्ञानिकता का ही सूचक है। यद्यपि यहाँ पर किया गया वाग्यमन किसी अनुष्ठान का अंग नहीं, अपितु अङ्गिरूप में ही प्रतिष्ठित है जो कि वाग्यमन ही है। शतपथ ब्राह्मणानुसार प्रजापति सृष्टि करते हैं तो उस समय किसी भी प्रकार के पदार्थादि के अभाव के कारण तप (वाग्यमन) ही करते हैं तथा आत्माश्रय भी करते हैं उससे ही सृष्टियज्ञ सफल होता है।

उपसंहार -

इस शोध पत्र में विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है कि सृष्टि के आदि में प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पत्ति के साथ ही मानव जीवन के सर्वविध कल्याण के यज्ञ विज्ञान को उत्पन्न किया। यज्ञ इस संसार का श्रेष्ठतम कर्म है, क्योंकि सृष्टि उपक्रम को निर्बाध गति से प्रवर्तित करने के लिए यज्ञ की नितान्त आवश्यकता है। यज्ञ शब्द एक व्यापक अर्थ को समाहित किये हुए है जैसा कि भगवान् पाणिनि ने कहा है यज्- देवपूजासंगतिकरणदानेषु[2] अर्थात् जिसमें देवपूजा संगति करण एवं दान की भावना प्रधान रूप से विद्यमान रहती है। जैसा कि मनुस्मति में भी प्रतिपादित किया गया है -

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज् जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः[3]॥

इस प्रकार द्रव्य यज्ञ ,योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, इत्यादि यज्ञों का वर्णन वैदिक साहित्य के साथ साथ लौकिक साहित्य में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। इसके साथ ही "द्रव्यं देवता त्यागो यागः[4]। यह कात्यायन श्रौतसूत्र का वचन भी यज्ञ के अतिशय महत्त्व को ही निरूपित करता है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

पाद टिप्पणी

1. शतपथ ब्राह्मण –
2. पाणिनीय धातु पाठ, भ्वादिगण
3. मनुस्मति – अध्याय- 3, श्लोक – 76
4. कात्ययायन श्रौत सूत्र - 1-2-2
5. शुक्लयजुर्वेद, अध्याय 31, मन्त्र 16 .
6. बृहदा.उ. - अ-4, 1/35
7. भगवद्गीता - अ. 3/10
8. भगवद्गीता - अ. 3/11
9. शुक्लयजुर्वेद संहिता- अध्याय-3- मंत्र 50 .
10. शुक्लयजुर्वेदः - 7/14 .
11. ''यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहाऽस्ति न कुत्रचित्'' अर्थात जो महाभारत में वर्णित है, वही अन्यत्र है। जो यहाँ (महाभारत में) में वर्णित नही है, वह कहीं नहीं है।
12. मनुस्मृतिः - 10/75
13. महाभाष्य-पस्पशाह्निक
14. मनुस्मृतिः - 2/20
15. ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' (श.ब्रा. 1/7/1/5)
16. भगवद्गीता - 4/28
17. यद्देवा देवहेडनम् अथर्ववेद – 6/1/14/1
18. मनुस्मृतिः – अ.- 4/76
19. निरुक्तम् - 1-6
20. निरुक्तम् - 4-2 (ऋग्वेदः -10-11-02)
21. ऋग्वेदः - पुरुषसूक्तम् – 10/90/06
22. ऐ. ब्रा. - 4-1
23. ताण्ड्यब्राह्मणम् - 8/6/12

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

24. ऐतरेयब्राह्मणम् – 3/12

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ऋग्वेद संहिता – (सायण भाष्य सहित), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

यजुर्वेद संहिता – (शुक्ल एवं कृष्ण यजुर्वेद), निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई।

शतपथ ब्राह्मण – स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली – 5

श्रीमद्भगवद्गीता – शाङ्कर भाष्य - गीताप्रेस गोरखपुर

तैत्तिरीय ब्राह्मण – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे।

कात्यायन श्रौत सूत्र - श्रीविद्याधर शर्मा, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

मीमांसा सूत्र – महर्षि जैमिनि (शाबर भाष्य सहित), चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी।

अष्टाध्यायी, यतिबोधयिता, राम लाल कपूर ट्रस्ट, दिल्ली।

पाणिनीय धातु पाठ – सम्पादक – पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट दिल्ली।

अथर्ववेद संहिता – रामस्वरूप शर्मा गौर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

यास्क निरुक्त – महामहोपाध्याय, श्री पण्ड़ित छज्जू राम शास्त्री, मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली – 110002

मनुस्मृति – रामेश्वरभट्ट , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी ।

श्रौत सूत्र (आश्वलायन, आपस्तम्ब, कात्यायन) – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

डॉ. सत्यप्रकाश सरस्वती – A Critical Study of Brahmans, जनज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली।

तिलक, लोकमान्य बाल गंगाधर – द ओरायन (The Orion: Researches into the Antiquity of the Vedas), मेशर्स तिलक ब्रदर्स, पुणे।